विज्ञान–शिक्षण व भाषा का अन्तर्सम्बन्ध

– अमित कुलश्रेष्ठ

गणित विषय के बारे में आम धारणा है कि यह संख्याओं, समीकरणों तथा रेखाओं का ताना–बाना है तथा इसके पठन–पाठन में भाषा की भूमिका नगण्य है। स्कूली स्तर पर देखा गया है कि बहुत से विद्यार्थी जो हिन्दी, अग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं में सामान्य प्रदर्शन करते हैं, वे भी गणित में अच्छे अंक पाने में सक्षम होते हैं। सुप्रसिद्ध खगोलशास्त्री गैलीलियो की अन्योक्ति है कि गणित स्वयं एक भाषा है जिसमें समूची प्रकृति के रहस्य गढ़े गये हैं। तो क्या गणित की भाषा ही सर्वोपरि है और इसका अस्तित्व प्राकृतिक भाषाओं से स्वतन्त्र है? क्या यह निष्कर्ष उचित है कि गणित की अमूर्त अवधारणाएँ सशक्त रूप से सम्प्रेषित करने के लिए भाषा का अपरिष्कृत रूप ही पर्याप्त है?

इस पर्चे में गणित और भाषा के अन्तर्सम्बन्ध पर विचार किया गया है। कई उदाहरणों के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि गणित की अतिनिर्भरता तथा भाषा की अवहेलना न केवल विषय–वस्तु के सटीक सम्प्रेषण को कठिन बनाती है बल्कि विद्यार्थी के मन में गणित की विकृत छवि का निर्माण भी करती है।

विज्ञान को कैसे परिभाषित किया जाये? भाषा क्या है और इसे कैसे परिभाषित किया जाना चाहिए? इन दोनों ही प्रश्नों पर कोई सार्वत्रिक सहमति सम्भव नहीं लगती। भाषा और विज्ञान दोनों ही व्यापक व परिवर्तनशील हैं तथा मानव–सभ्यता के आधार स्तम्भ हैं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि भाषा की उत्पत्ति पहले हुई होगी या फिर विज्ञान की। यदि आग की खोज को विज्ञान का प्रथम सफल प्रयोग माना जाये तो क्या उस समय तक मनुष्य ने बोलना सीख लिया होगा? क्या सांकेतिक सम्प्रेषण भाषा नहीं है? यदि चॉम्सकी[1] के शब्दों में समझने का प्रयास करें तो एक परिमित शब्द–समुच्चय से निर्मित सीमित शब्दों वाले वाक्यों का संकलन ही भाषा है तथा इस शब्द–समुच्च्य से वाक्यों के निर्माण करने की युक्ति उस भाषा का व्याकरण है। सांकेतिक सम्प्रेषण से ले कर चॉम्स्की की भाषा की अवधारणा का अन्तराल समूची मानव–सभ्यता का इतिहास है। इस दौरान विज्ञान व भाषा दोनों एक–दूसरे को समृद्ध करते हुए विकसित

होते रहे। इस विकास–यात्रा में प्राकृतिक भाषाओं के माध्यम से जब विज्ञान स्वयं को व्यक्त करने में असमर्थ रहा तब उसने गणितीय सूत्रों व संरचनाओं के ठोस तार्किक धरातल का सहारा ले कर नयी अवधारणाओं की नींव रखी। उदाहरणार्थ, सत्रहवीं शताब्दी के पश्चात भौतिकीय संकल्पनाओं में कैल्कुलस की भाषा की भूमिका से न केवल विज्ञान समृद्ध हुआ, बल्कि भाषा में 'तात्क्षणिक' शब्द को भी एक सटीक अर्थ मिला। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। गणित के व्यापक स्वरूप को प्रकाशित करते हुए सुप्रसिद्ध खगोलशास्त्री गैलीलियो[2] ने कहा था कि गणित स्वयं एक भाषा है जिसमें समूचे ब्रह्माण्ड के गूढ़ रहस्य गढ़े गये हैं। गैलीलियो के इस कथन को चॉम्सकी[1] अथवा हॉकेट[4] की भाषा की कसौटियों पर परखने के बजाय उसे एक उपमा के रूप में लेना ही उचित होगा। चॉम्स्की व्याकरण के माध्यम से भाषा को समझाते हैं, जिसमें कुछ सीमित चिह्नों से बने हुए वाक्यों को व्याकरणिक नियमों के आधार पर एक भाषा में स्पष्ट रूप से स्वीकृत या अस्वीकृ त किया जाता है। यह दृष्टिकोण कुछ पेचीदा अवश्य है, परन्तु भाषा के इस विश्लेषण ने ही आधुनिक कम्प्यूटर विज्ञान की नींव रखी है। कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग की भाषाएँ इसी पर आधारित हैं। वहीं हॉकेट ने प्राकृतिक भाषाओं के ध्वन्यात्मक–श्रवणात्मक गुणों को केन्द्र में रखते हुए उन्हें 13 लक्षणों के आधार पर परिभाषित किया है। हम चॉम्स्की और हॉकेट के विश्लेषणों की गुत्थी में न उलझ कर सिर्फ़ यह समझेंगे कि भाषा विचारों और अवधारणाओं के सम्प्रेषण का माध्यम है। विज्ञान और गणित की अवधारणाओं का सम्प्रेषण, पुष्टि और विकास भी भाषा के माध्यम से ही हो सकता है। अतः इतना तो तय है कि भाषा, विज्ञान और गणित के परस्पर अन्तर्सम्बन्ध को किसी भी दृष्टिकोण से नकारा नहीं जा सकता।

पर वर्तमान में क्या यह अन्तर्सम्बन्ध स्कूली स्तर पर, विशेष कर उच्च माध्यमिक कक्षाओं के सन्दर्भ में, विज्ञान और गणित–शिक्षण में दृष्टिगोचर होता है? शायद नहीं! यह एक यथार्थ है कि भाषा की अवहेलना की क़ीमत पर विद्यार्थी विज्ञान और गणित विषयों में पारंगत होने का भ्रम पाल रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप वे सतही स्तर पर कुछ रटी–रटायी तरक़ीबों का यान्त्रिक प्रयोग कर विषय की गहराई में जाने से बच रहे हैं। अब भाषा किस प्रकार एक वैज्ञानिक या गणितीय सोच को प्रभावित कर सकती है, इसे एक घटना के माध्यम से समझते हैं। कक्षा 12 में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए कुछ विद्यार्थियों ने मुझसे प्रश्न किया, "सर, क्या आधुनिक गणितज्ञों को π का मान शुद्ध रूप से पता है?" मैंने प्रतिप्रश्न किया, "क्या π एक संख्या है?" इस पर कुछ विद्यार्थी बोले, "हाँ, पर यह एक अपरिमेय संख्या है।" मैंने फिर पूछा कि एक संख्या के मान से उनका क्या अभिप्राय है?

उदाहरणार्थ, संख्या 2 का मान क्या है? कुछ और कुरेदने पर पता चला कि दशमलव–प्रणाली में π के निरूपण को ही वे उसका मान कह रहे थे। यहाँ ग़लती विद्यार्थियों की नहीं, बल्कि उस शिक्षा–प्रणाली की है जिसने उन्हें परिभाषाओं में आने वाले शब्दों से खेलना नहीं सिखाया। उनके मूल में जा कर उन शब्दों को रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से जोड़ना नहीं सिखाया। कई विद्यार्थियों को विज्ञान से कहीं अधिक भय उसकी शब्दावली से होता है। "इतने बड़े–बड़े नाम कैसे याद करते, इसीलिए विज्ञान नहीं लिया", ऐसी बातें अक्सर सुनने को मिल जाती हैं। शिक्षक अपने भाषाई कौशल से ऐसा भय दूर कर सकता है। बड़े शब्दों को तोड़ कर उनके बारे में चिन्तन करना और टूटे हुए शब्दों की तुलना अन्य वैज्ञानिक सन्दर्भों में प्रयोग होने वाले शब्दों से करना ऐसे प्रयोग हैं जो विज्ञान–शिक्षण को रुचिकर तो बनाते ही हैं, साथ–ही–साथ विद्यार्थी को भाषा के प्रति संवेदनशील भी करते हैं। उदाहरण के लिए 'फोटोन' या 'फोटोइलेक्ट्रिक इफेक्ट' की चर्चा करते समय 'फोटोसिन्थेसिस' की भी याद दिला दी जाये अथवा 'माइक्रोस्कोप' की बात करते समय 'माइक्रोमीटर' और 'स्टेथोस्कोप' का भी ज़िक्र हो तो विद्यार्थी शब्दावली के वैज्ञानिक स्वरूप से भी परिचित होंगे और स्वयं भी कुछ मज़ेदार शब्दों की रचना करने के लिए प्रेरित होंगे। इसके अलावा द्विभाषी विद्यार्थियों को ऐसे शब्दों का अनुवाद करने के बाद एक दूसरी भाषा में तुलना करने के लिए भी कहा जा सकता है। मुख्य बात यह है कि वे शब्दावलियों को संरचनात्मक दृष्टिकोण से ग्रहण करते हुए आगे बढ़ें, न कि एक कठिन स्पेलिंग अथवा एक प्रतीक के रूप में।

प्रतीकों को रट कर उसी को अवधारणा मान लेने की समस्या गणित में अक्सर आती है। प्रायः विद्यार्थियों के लिए संख्या का अर्थ 10 अंकों की करामात से बने एक प्रतीक के रूप में ही होता है। मैं अक्सर विद्यार्थियों से पूछता हूँ कि 1 और 0.99999999... में कौन–सी संख्या बड़ी है? हमेशा उत्तर आता है कि 1 बड़ी संख्या है और साथ ही यह भी बताते हैं कि 0.99999999... तो 1 की तरफ़ बढ़ रहा है, पर 1 के बराबर नहीं है! ऐसा कहते समय विद्यार्थी यह नहीं समझ पाते कि पहले तो वे भाषा का ग़लत प्रयोग कर रहे होते हैं। और दूसरे यह कि उनके ऐसा कहने में आधारभूत अवधारणात्मक त्रुटि भी है। आख़िर इस बात का तो कोई अर्थ ही नहीं है कि एक निश्चित संख्या दूसरी निश्चित संख्या की ओर बढ़ रही है! उपरोक्त प्रश्न में वास्तविकता यह है कि 0.99999999... और 1 बराबर हैं, क्योंकि इनके बीच में तो कोई संख्या है ही नहीं! दशमलव–प्रणाली में किसी संख्या को निरूपित करने के भिन्न तरीक़े हो सकते हैं इस तथ्य पर कभी

हमारे पाठ्यक्रम में बल नहीं दिया गया। ऐसे में न सिर्फ़ विद्यार्थियों की समझ कच्ची रहती है, बल्कि अनजाने ही वे भाषा के ग़लत प्रयोग भी करते हैं।

कई बारीकियों को विद्यार्थियों तक पहुँचाने के लिए भाषा के परिष्कृत रूप की आवश्यकता होती है। किसी तथ्य को सरल शब्दों में समझाना एक कला है, परन्तु यदि यही सरल शब्द किसी संकल्पना अथवा विचार को आधे–अधूरे तौर पर सम्प्रेषित करते हों तो यह अति–सरलीकरण है। इस स्थिति में शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों में भाषा की समझ को भी बढ़ाते हुए उन्हें यह विश्वास दिलाये कि क्यों उस परिस्थिति विशेष में सरल शब्दों का प्रयोग उचित नहीं है। इस सम्बन्ध में ग्रैबनर[5] के प्रसिद्ध आलेख "हू गेव यू दि एप्साइलन" का ज़िक्र करना प्रासंगिक होगा। इस लेख का आरम्भ कुछ इस प्रकार है :

> विद्यार्थी : एक कार की गति 50 मील प्रति घण्टा है। इसका क्या अर्थ हुआ?
>
> शिक्षक : इसका अर्थ हुआ कि किसी भी $\varepsilon > 0$ के लिए, एक ऐसा $\delta > 0$ विद्यमान है कि $-\delta < t_2 - t_1 < \delta$ होने की दशा में आवश्यक रूप से $-\epsilon < \frac{s_2 - s_1}{t_2 - t_1} - 50 < \epsilon$ सत्य होगा।
>
> विद्यार्थी : हे भगवान! किसी ने ऐसा सोचा भी कैसे?

क्या एक आसान–से प्रश्न का उत्तर देने के लिए शिक्षक को ऐसा अजीबोगरीब वाक्य–विन्यास बनाना आवश्यक था? यदि यह माना जाये कि कार एक समान गति से चल रही थी, तो निश्चित ही शिक्षक का ऐसा कहना जटिल था। एक समान गति की स्थिति में तो गति को इकाई समय में चली गयी दूरी कहा ही जा सकता था। यहाँ शिक्षक ने तात्क्षणिक गति को दूरी व समय के वक्र की प्रवणता के रूप में व्यक्त करने का प्रयास किया है। साथ ही उसने प्रवणता की परिभाषा से भी विद्यार्थी का परिचय कराया है। पर क्या यह सब सरल शब्दों में एक आम बोलचाल की भाषा के रूप में कहना सम्भव नहीं था? इस शिक्षक की आलोचना करना कठिन काम नहीं है। परन्तु किसी भी अवधारणा को सटीक रूप से सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से कई परिभाषाओं को आम बोलचाल की भाषा में व्यक्त करना सम्भव नहीं है। उपर्युक्त उदाहरण तात्क्षणिक की अवधारणा को गणितीय भाषा में प्रस्तुत करता है। इस उदाहरण के सन्दर्भ में हमें यह समझना होगा कि विज्ञान में तात्क्षणिक की अवधारणा की नींव बस कुछ ही शताब्दी पहले न्यूटन ने रखी और इस अवधारणा को समझाने के लिए किसी भी प्राकृतिक भाषा

में उपलब्ध उचित शब्दों व वाक्य–विन्यास के अभाव में उसे कैल्कुलस की खोज करनी पड़ी। कैल्कुलस की इस नयी भाषा में वाक्य "संवेग परिवर्तन की दर ही बल है" मात्र $F = \frac{dp}{dt}$ जितना छोटा रह गया। कैल्कुलस मानवीय ज्ञान के इतिहास में एक मील का पत्थर थी और इस प्रकार बस कुछ ही सदियों पहले स्थापित हुई तात्क्षणिक की संकल्पना को शिक्षक द्वारा विद्यार्थी को सरल शब्दों में समझाने की अपेक्षा करना न्यायोचित नहीं होगा। इस प्रकार क्रमानुगत रूप से नये शब्दों और चिह्नों को सटीक अर्थों में बाँध कर नयी खोज और समझ को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में विज्ञान के साथ–साथ भाषा की समृद्धि भी होती रही है। कई शब्द और वाक्य–विन्यास विज्ञान के सहारे ही जीवित रहे हैं। साथ–ही–साथ इस प्रक्रिया में चिह्नों पर आधारित भाषा यानी कि गणितीय रूप में विज्ञान की अभिव्यक्ति भी प्रबल होती रही। कुछ सन्दर्भों में तो गणित को ही विज्ञान की भाषा के रूप में स्वीकर कर लिया गया।

वाक्य–विन्यास में शब्दों की हेराफेरी से अर्थ का अनर्थ होने की सम्भावना होती है और जब मामला गणित की संकल्पना से जुड़े किसी वाक्य का हो तो अर्थ का अनर्थ होना अवश्यम्भावी है! विद्यार्थी और शिक्षक के उपर्युक्त संवाद में $\varepsilon > 0$ और $\delta > 0$ की अदला–बदली करके बना वाक्य कुछ अर्थ तो दे सकता है, परन्तु वह अर्थ गति की अवधारणा से कोसों दूर होगा। प्राकृतिक भाषा और गणित दोनों में ही अमूर्तता विद्यमान है। हालाँकि भाषा की अमूर्तता आम बोलचाल के वाक्यों में उतनी प्रकट नहीं होती, जितनी कि एक दार्शनिक के कथन में अथवा एक कवि की कल्पना में। इस दृष्टि से अमूर्तता किसी भाषा का नहीं, बल्कि उस ज्ञान का तत्व है जो उस भाषा के माध्यम से प्रकट किया जाता है।

भाषा में तार्किक व प्रतिबन्धात्मक शब्दों की उपेक्षा के कारण स्कूली स्तर पर गणित के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ अवश्य रहती हैं। एक अध्यापक ने बच्चों से पूछा कि यदि तुम्हारे पास पाँच सेब हैं, जिनमें से तुमने दो सेब अपने भाई तो दे दिये तो अब तुम्हारे पास कितने सेब बचे? इस पर बालक ने कहा, "आपकी यह धारणा कि मैं अपने सेब किसी को दे दूँगा, त्रुटिपूर्ण है। मुझे अपने सेबों की रक्षा करना भली–भाँति आता है। अतः आपका प्रश्न ग़लत है।" यहाँ स्पष्ट है कि बालक ने अध्यापक के प्रश्न में 'यदि' शब्द की उपेक्षा करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि अध्यापक चाहता है कि बालक दो सेब अपने भाई को दे दे। यह उल्लेख हास्यास्पद हो सकता है, परन्तु स्नातक स्तर पर पढ़ने वाले अनेक विद्यार्थी भी कुछ समतुल्य प्रश्न दूसरे रूप में पूछते हैं। वे कहते हैं कि दो कथनों (क) व (ख) के लिए यह दर्शाना कि (क) के सत्य होने की स्थिति में (ख) भी

निश्चित रूप से सत्य होगा (अर्थात (क) → (ख) सिद्ध करना) तब तक अर्थपूर्ण नहीं है जब तक स्वयं (क) की सत्यता की जाँच न कर ली जाये। यहाँ पुनः प्रतिबन्धात्मक शब्द 'यदि' की उपेक्षा करते हुए विद्यार्थी ने अपनी अधूरी समझ बनायी है। इसी प्रकार विद्यार्थी (क) → (ख) तथा (ख) → (क) में विभेद कर पाने में सक्षम नहीं होते। इस विभेद को स्पष्ट रूप से जानने के लिए भाषा में शब्दों के छोटे–से हेरफेर के परिणामस्वरूप उनके अर्थों में होने वाले वृहत अन्तर की समझ होनी चाहिए।

एक और उदाहरण लेते हैं जहाँ उच्च माध्यमिक कक्षाओं में प्रायः सभी विद्यार्थी अनुमान और प्राकृतिक भाषाओं द्वारा सम्प्रेषित शब्दों के आधार पर अपनी समझ बनाते हैं और उनमें से अधिकांश आजीवन अपने प्रथम प्रयास में बनी इस छवि से छुटकारा नहीं पाते। अब ये तीन व्यंजक देखिए,

(क) $a = 1 + 2 + 3 + 4 + 5 + 6 + 7 + 8 + \cdots$

(ख) $b = 1 + \frac{1}{2} + \frac{1}{4} + \frac{1}{8} + \frac{1}{16} + \cdots$

(ग) $c = 1 + \frac{1}{2} + \frac{1}{3} + \frac{1}{4} + \frac{1}{5} + \frac{1}{6} + \cdots$

व्यंजक (क) में चूँकि प्रत्येक पद में उत्तरोत्तर बड़ी संख्या जुड़ती जा रही है। अतः विद्यार्थी योगफल a को अनन्त कहेंगे। अब इसी बात को आगे बढ़ाते हुए देखते हैं कि व्यंजक (ख) में उत्तरोत्तर छोटी संख्या जुड़ती जा रही है और जिन विद्यार्थियों का गुणोत्तर श्रेणी से परिचय है वे तुरन्त b की गणना कर लेंगे। अब बात करते हैं व्यंजक (ग) की। यहाँ भी व्यंजक (ख) की तरह प्रत्येक पद में छोटी संख्या जुड़ती जा रही है। यदि इन विद्यार्थियों को बताया जाये कि योगफल c भी अनन्त है तो यह उन्हें विचित्र लगेगा। यह संख्याओं के प्रति उनकी समझ के परे है। अब ऐसा क्यों हुआ? कौन–सा योगफल अनन्त है और कौन–सा योगफल एक परिमित संख्या? अपने अनुमान के आधार पर यह कह देना कि यदि आगे के पद उत्तरोत्तर छोटे होते जायेंगे तो पूरी श्रेणी का योगफल परिमित होगा, सही नहीं है। इसे सटीक रूप से समझना अभिसारी और अपसारी श्रेणियों का अध्ययन है तथा यह भी ग्रैबनर के उपर्युक्त विद्यार्थी–शिक्षक संवाद को समझने जैसा ही क्लिष्ट है। इस स्थिति में भी प्राकृतिक भाषाओं के स्थान पर गणित की भाषा ही संकल्पना को सटीक रूप से व्यक्त करती है। हालाँकि गणित की ऐसी क्लिष्ट भाषा के सीधे प्रयोग से पहले शिक्षक को चाहिए कि वह आम बोलचाल की भाषा में विद्यार्थियों को नयी संकल्पना के प्रति प्रेरित करते हुए

उन्हें यह विश्वास दिलाये कि उस संकल्पना को समझने और मन में ठीक प्रकार से सहेज कर रखने के लिए भाषा का परिष्कृत स्वरूप तथा गणित के चिह्नों का प्रयोग क्यों आवश्यक है। जो दृष्टिगोचर है अथवा सीधे इन्द्रियबोध की सीमा के भीतर है उसे प्राकृतिक भाषाएँ आसानी–से व्यक्त कर पाती हैं। इस दृष्टि से अति सूक्ष्म और अनन्त दोनों ही ऐसी अवधारणाएँ हैं जिनको अनुमान के आधार पर तो बस आंशिक रूप से समझने का प्रयास भर किया जा सकता है, परन्तु इनका सटीक सम्प्रेषण करने में गणितीय चिह्नों में लिपिबद्ध भाषा ही सक्षम है। गणितीय चिह्न प्राकृतिक भाषाओं के शब्दों की तरह अर्थों की खोज में पाठक की व्यक्तिगत व्याख्या पर आश्रित नहीं होते। साथ ही इन चिह्नों द्वारा किसी संकल्पना अथवा तथ्य का प्रस्तुतीकरण कम–से–कम स्थान में किया जा सकता है। भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त[6] द्वारा रचित *ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त* के अठारहवें अध्याय के श्लोक 64–65 को देखते हैं, जो कि वास्तव में एक सूत्र है।

मूलं द्विधेष्टवर्गाद् गुणकगुणादिष्टयुतविहीनाच्च।
आद्यवधो गुणकगुणः सहान्त्यघातेन कृतमन्त्यम।।
वज्रवधैक्यं प्रथमं प्रक्षेपः क्षेपवधतुल्यः।
प्रक्षेपशोधकहृते मूले प्रक्षेपके रूपे।।

इन पंक्तियों में निहित गणितीय विचार की महत्ता और गहराई अपने समय से कोसों आगे है। ये पंक्तियाँ उस समय लिखी गयी थीं जब गणितीय विचार को व्यक्त करने के लिए प्राकृतिक भाषा का प्रयोग किया जाता था। स्पष्ट है कि यह शब्द–चयन व विन्यास उस समय की बोलचाल की भाषा से कहीं अधिक क्लिष्ट था और आम जनमानस की समझ के परे भी। अतः विचित्र चिह्नों को आम व्यक्ति को गणित से दूर करने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वर्तमान निरूपण–प्रणाली के अनुसार इन पंक्तियों में ब्रह्मगुप्त ने कहा है कि

$$(m_1^2 - dn_1^2)(m_2^2 - dn_2^2) = (m_1m_2 + dn_1n_2)^2 - d(n_1m_2 + m_1n_2)^2$$

कालान्तर में यह श्लोक पेल समीकरण के हल की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ और गणित के कुछ क्षेत्रों में अभी भी इसके अन्य स्वरूपों पर शोध चल रहा है।

संख्याओं का निरूपण दस की घातों के गुणांकों के रूप में किया जा सकता है, यह विचार भी सीमित चिह्नों द्वारा सटीक प्रकार से एक संकल्पना को व्यक्त करने का साधन है। अन्यथा यदि एक प्राकृतिक भाषा रोमन द्वारा संख्याओं को निरूपित करते हुए यदि कोई DCCCLXXXVIII व CXII का योगफल निकालने का

प्रयास करे तो उस निरूपण–पद्धति की सीमित उपयोगिता का अनुमान स्वयं लगा सकता है।

नोबेल पुरस्कार से सम्मानित प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री विग्नर[7] ने 1959 में न्यू यॉर्क विश्वविद्यालय के व्याख्यान "अनरीज़नेबल इफ़ेक्टिवनैस ऑफ़ मैथमेटिक्स इन दि नैचुरल साइंसेज़" में कहा है कि–

> "यह कथन कि प्रकृति के रहस्य गणित की भाषा में लिखे गये हैं तीन सौ साल पहले ही स्पष्ट रूप से कह दिया गया था (गैलीलियो[3] को उद्धृत करते हुए) और अब तो यह पहले की अपेक्षा और भी प्रासंगिक है। भौतिकी के मूल सिद्धान्तों की नींव में गणितीय विचारों के महत्त्व को डिराक द्वारा प्रतिपादित क्वाण्टम भौतिकी के उदाहरण से समझना चाहिए... । भौतिकी के सिद्धान्तों की नींव में गणितीय भाषा की चमत्कारिक उपयोगिता एक अद्भुत उपहार है जिसे हम न तो ठीक से समझते हैं और न ही हम जिसके उचित पात्र हैं। हमें कृतज्ञता व्यक्त करते हुए आशा करनी चाहिए कि भविष्य में भी यह उपहार हमें उपलब्ध होगा... ।"

गणित की भाषा और लिपि किन्हीं प्राकृतिक भाषाओं से परे नहीं है, बल्कि यह उन्हें पुष्ट करते हुए उनमें कम–से–कम चिह्नों अथवा वाक्यों द्वारा वस्तुनिष्ठ तार्किक सम्प्रेषण का अनिवार्य साधन है। विग्नर के शब्दों में यही उपहार है और हमें चाहिए कि हम पीढ़ी–दर–पीढ़ी इस उपहार को संजोते–सजाते, इसमें नये आयाम जोड़ते इसे और सुदृढ़ बनायें। जिससे प्रकृति के नियम व रहस्य हमारे समक्ष स्वयं उद्घाटित हो एवं हमारी सोच व समझ को और सशक्त करें।

सन्दर्भ सूची

1. चॉम्स्की, एन. (1957)। *सिन्टैक्टिक स्ट्रक्चर्स*। दि हेग : माउटन।
2. गैलीलियो, गैलिली (1623)। *दि एसेयर* (ओपेरे इटैलियन सैजियेटर)। अनुवाद : स्टिलमैन ड्रेक। पृष्ठ संख्या 171
3. गैलीलियो, गैलिली (1957)। *डिस्कवरीज़ एण्ड ओपिनियन ऑफ़ गैलीलियो*। पृष्ठ संख्या 237–8
4. हॉकेट, चार्ल्स एफ. (1960)। "दि ओरिजिन ऑफ़ स्पीच"। *साइंटिफिक अमेरिकन* 203।

5. ग्रैबनर, जूडिथ, वी. (1983)। "हू गेव यू दि एप्साइलन? कॉची एण्ड दि ओरिजिन्स ऑफ़ रिगर्स कैल्कुलस"। *दि अमेरिकन मैथमेटिकल मन्थली* 90 : 185–194।
6. ब्रह्मगुप्त (628 ईस्वी)। *ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त*।
7. विग्नर, ई. (1960)। "दि अनरीज़नेबल इफ़ेक्टिवनैस ऑफ़ मैथमेटिक्स इन दि नैचुरल साइंसेज़"। रिचर्ड कोरंट लेक्चर इन मैथमेटिकल साइंसेज़ डिलीवर्ड एट न्यू यॉर्क यूनिवर्सिटी, मई 11, 1959। *कम्युनिकेशन्स ऑन प्योर एण्ड एप्लाइड मैथमेटिक्स,* 13 : 1–14।